इकाई 1 हमारा पर्यावरण

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 अजैविक पर्यावरण
  1.2.1 वायुमण्डल
  1.2.2 प्रकाश
  1.2.3 तापमान
  1.2.4 पवन
  1.2.5 आर्द्रता
  1.2.6 जल
  1.2.7 मृदा
1.3 समय के साथ पर्यावरण में परिवर्तन
  1.3.1 मंदगति परिवर्तन
  1.3.2 तीव्रगामी परिवर्तन
1.4 सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- पारिस्थितिकी, पर्यावरण और पारिस्थितिक तंत्र के बीच अन्तर समझ सकेंगे,
- पर्यावरण और पर्यावरणीय कारकों को समझ सकेंगे,
- प्राणियों के अपने पर्यावरण में अन्योन्याश्रय के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे,
- समय के साथ पर्यावरण में होने वाले मंद और तीव्र परिवर्तनों के विषय में जान सकेंगे, और
- परिवर्तनशील पर्यावरण में आधुनिक मानव की भूमिका समझ सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

पारिस्थितिकी (ecology), पर्यावरण (environment), और पारिस्थितिक तंत्र (ecoseptem) ऐसे तीन सामान्य शब्द हैं जिन्हें हम प्रतिदिन किसी न किसी संदर्भ में सुनते हैं। पहले हमें इन तीनों महत्वपूर्ण शब्दों के बीच के अन्तर को समझ लेना चाहिए।

यदि आप अपने प्रतिवेश पर चारों और दृष्टि डालें तो आप देखेंगे कि कोई भी प्राणी अपने आप को अपने प्रतिवेश से अलग नही रख पाता है। प्रत्येक जीव एक जटिल रूप से संयोजित तंत्र का भाग है जिस में उसके अतिरिक्त अजीव तत्व भी सम्मिलित हैं। पारिस्थितिकी (ecology ग्रीक में Oikos = घर) वह विज्ञान है जिस में हम यह अध्ययन करते हैं कि जीव (जन्तु, वनस्पति और जीवाणु) किस प्रकार प्राकृतिक जगत में और उसके साथ अन्योन्यक्रिया (पारस्परिक क्रिया) करते है। किस प्रकार जीव अपने प्रतिवेश के अनूरूप ढल जाते हैं, कैसे, अपने प्रतिवेश को उपयोग में लाते है या कोई क्षेत्र किस प्रकार जीवों की उपस्थिति के कारण बदलता या प्रभावित होता है। वह सब जो किसी जीव को उसके जीवनकाल में प्रभावित करता है सामूहिक रूप से उसका पर्यावरण (ग्रीक Environ = प्रतिवेश) कहलाता है। पर्यावरण उन सभी आवश्यकताओं की आपूर्ति करता है जो प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से जीव

को प्रभावित कर सकते हैं, जैसे अपेक्षित आहार, पोषक और ऊर्जा आदि। इसलिये पर्यावरण दो प्रकार के हो सकते हैं – जैविक या अजैविक।

जैविक या जीवीय पर्यावरण के घटक वह सारे जीवधारी (पौधे और पशु) है: जिनके साथ जीव, उसके समूह या पूरा सम्प्रदाय अन्योन्यक्रिया करता है। इसे एक उदाहरण द्वारा अधिक अच्छे ढंग से समझा जा सकता है। यदि आप किसी वन में जाएं तो आप देखेंगे कि वनस्पति जातियों में या पशुओं के मध्य बहुत सी अन्योन्यक्रियाए (interactions) चल रही हैं। कुछ जातियां पूर्णतया: आहार, जल, पोषक के लिए दूसरी जातियों पर निर्भर हैं (परजीवी) जबकि दूसरी ओर सहजीवन (symbiosis) भी देखा जा सकता है जिसमें दोनों जातियां साथ रहते हुए एक दूसरे को सहयोग देती हैं और परस्पर हितकर सम्बन्ध स्थापित करती है। इस प्रकार अन्योन्यक्रिया करने वाली प्रत्येक जाति दूसरी जातियों के लिए जैविक पर्यावरण का अंश हैं। भौतिक और रसायनिक घटक जो प्राणियों को प्रभावित करते हैं अजीवीय या अजैविक पर्यावरण को संघटित करते हैं। ये घटक वायुमण्डल, जलवायु, जल, पोषक, सूर्य का प्रकाश और मृदा हैं।

पारिस्थितिक तंत्र एक ऐसा तंत्र है जिसकी रचना जीवों के विविध प्रकारों की एक दूसरे के साथ और अपने भौतिक पर्यावरण से अन्योन्यक्रिया के कारण होती है। अत: इसका संघटन एक विशिष्ट क्षेत्र में निवास कर रहे समस्त सम्बन्धित जीवों और क्षेत्र के भौतिक लक्षणों द्वारा होता है। पारिस्थितिक तंत्र प्राकृतिक हो सकता है जैसे कोई वन, घासस्थल, मरुस्थल झील आदि, या वह मानव द्वारा निर्मित हो सकता है जैसे खेत। वह बहुत छोटा हो सकता है (जैसे जल जीवशाला aquarium) या फिर विशाल (जैसे महासागर)। हमारा ग्रह कई विस्तृत क्षेत्रीय प्रकारों के पारिस्थितिक तंत्रों से बना है। इन्हें जीवोम (biomes) कहते हैं और इनकी चर्चा इकाई-3 में की जाएगी।

यह इकाई पर्यावरण के अध्ययन से आपका परिचय कराती है। हम इस इकाई में अजैविक कारकों की चर्चा करेंगे जो भौतिक पर्यावरण संघटित करते हैं। आप इसमें जान सकेंगे कि समय के साथ किस प्रकार पर्यावरण बदला है और निरंतर बदल रहा है। हम इसकी संक्षिप्त चर्चा भी करेंगे कि हमारे उद्यमों ने किस प्रकार प्राकृतिक पर्यावरण को प्रभावित किया है। आपको यह समझने में सहायता होगी कि प्राकृतिक तंत्रों की क्रियाशीलता कुछ निश्चित दबावों के अन्तर्गत विभंगित क्यों हो जाती है। यह इकाई जैव विविधता संरक्षण के संभव उपाय खोजने पर और दीर्घ कालीन पर्यावरण प्रबन्ध के लिए भी आपको प्रेरित करेगी। इस प्रकार का विवेक प्रत्येक पर्यटन व्यवसायी के लिए आवश्यक है ताकि एक ऐसे विश्वस्त पर्यटन को बढ़ावा दे सके जो प्रकृति से समन्वय रखता हो। आगामी इकाई – प्रकृति में **संयोजन,** में आप जीवों और उनके भौतिक पर्यावरण के मध्य विभिन्न संयोजनों के विषय में पढ़गे।

1.2 अजैविक पर्यावरण

हम जानते हैं कि जैव जगत् अजैविक पर्यावरण में निवास करता है और उस पर निर्भर है। यदि हम अपनी पृथ्वी के विभिन्न क्षेत्रों में जीवों की उत्तरजीविता, वितरण और अनुकूलन को समझना चाहें तो पर्यावरण के अजैविक घटकों का ज्ञान बहुत महत्वपूर्ण है। उदाहरणार्थ कुछ अजैविक पर्यावरणीय कारक जैसे किसी क्षेत्र की जलवायु, मृदा और धरातल उस क्षेत्र में विशेष प्रकार की वनस्पति के लिए उत्तरदायी होते हैं। यही कारण है कि शिमला और उडगमंडलम की वनस्पति जयपुर और जैसलमेर की वनस्पति से भिन्न है। विभिन्न अजैविक कारकों का उपयोग करने, सहन करने या उस से संघर्ष करने की जीवों की योग्यता में विविधता पाई जाती है जो उनके वितरण, व्यवहार और दूसरे जीवों के साथ उनके सम्बन्धों को सीमित कर देती है। आइए हम कुछ ऐसे महत्वपूर्ण अजैविक कारकों पर विचार करें जो जीवन के लिए निर्णायक हैं।

1.2.1 वायुमण्डल

हमारा वर्तमान वायुमण्डल अनेक गैसों और निलंबित कणों का मिश्रण हैं। निचले वायुमंडल में निरंतर समिश्रण चलता रहता है जिसके परिणामस्वरूप 80 कि. मी. की ऊंचाई तक हर स्थान पर हमारे वायुमंडल का संघटन लगभग एक सा रहता है। 80 कि.मी. से अधिक ऊंचाई पर ये गैसें स्तरित हो जाती है अर्थात भारी गैसें निम्न स्तर पर पाई जाती है जबकि ऊंचे स्तर पर हल्की गैसे होती हैं।

सारणी-1 में आप देख सकते हैं कि जल वाष्प को छोड़कर निचला वायुमंडल 78.08% नाइट्रोजन द्वारा संघटित हैं। वायुमण्डलीय नाईट्रोजन को जीव (कुछ प्रकार के जीवाणुओं और नीले हरे शैवालों को छोड़कर) प्रत्यक्ष रूप से उपयोग में नहीं ला सकते । ये पहले नाइट्रेट में परिवर्तित किया जाता है और फिर पौधे एवं अन्य प्राणी इसे उपयोग में लाते है। ये प्रक्रिया प्रकृति में नाईट्रीफिकेशन कहलाती है। आक्सीजन 20.95 प्रतिशत है और वह न केवल हमारी श्वसन क्रिया के लिए आवश्यक है बल्कि इस पृथ्वी के सम्पूर्ण प्राणियों (अवायु जीवाणु (anaerobic bacterea) को छोड़ कर) के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है और ऊर्जानिर्मुक्ति क्रिया के लिए भी आवश्यक है। इन के अतिरिक्त अधिक पाई जाने वाली गैसें ऑर्गन और कार्बन डाईऑक्साइड हैं। कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) सारे हरे पौधों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रकाश संश्लेषण क्रिया में हरे पौधे कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) और जल को कच्चे माल के रूप में उपयोंग कर के सौर ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा, जिस पर सम्पूर्ण जैविक तंत्र निर्भर है, में परिवर्तित करते है। वायुमण्डल में जलवाष्प भी अल्पमात्रा (लगभग 1 प्रतिशत) में पाई जाती है और कई दूसरी गैसें भी उपस्थित हैं इन में ओज़ोन (O_3) भी है जो वायुमंडल की ऊपरी परत में ऑक्सीजन पर सूर्य की क्रिया के कारण बनती है और जो सूर्य से विकिरित होने वाली पराबैंगनी किरणों के हानिकारक प्रभावों से समस्त जीवधारियों को बचाती है। इन गैसों (जैसे कि जलवाष्प और कार्बन डाईऑक्साइड) का आयतन समय के अनुसार और एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदलता रहता हैं।

ओज़ोन पृथ्वी की सतह से 20-22 किलोमीटर ऊपर वायुमण्डल के समताप मण्डलीय क्षेत्र में सकेन्द्रित है।

वायुमण्डल में द्रव या ठोस सूक्ष्म कण पाये जाते है। इन्हें एरोसॉल (aerosol) कहते हैं। इन में से अधिकांश पृथ्वी की सतह के निकट पाए जाते हैं और इनकी उत्पत्ति वायु द्वारा मृद्रा अपरदन, जंगल की आग के कारण, महासागरीय फुहार से प्राप्त नमक के क्रिस्टल और ज्वालामुखी उद्गार के कारण होती है। एरोसॉल का एक दूसरा श्रोत औद्योगिक और कृषीय कार्य है। यद्यपि वायुमण्डल में एरोसॉल की मात्रा बहुत कम है तथापि ये निलंबित कण बहुत महत्वपूर्ण है। उदाहरणार्थ कुछ कण मेघ और वर्षा की रचना के केंद्र बनते हैं और कुछ दूसरे कण सूर्य के प्रकाश से अन्योन्यक्रिया करके हवा के ताप को प्रभावित करते है।

सारणी-1 : निचले वायुमण्डल में पाई जाने वाली गैसों (जलवाष्प को छोड़कर) के सापेक्षित अनुपात

गैस	आयतन (प्रतिशत में)
नाइट्रोजन	78.08
आक्सीजन	20.95
आर्गन	0.93
कार्बन डाईऑक्साइड	0.03
नीऑन	0.0018
हीलियम	0.00052
मीथेन	0.00015
क्रिप्टॉन	0.00010
नाइट्रस ऑक्साइड	0.00005
हाइड्रोजन	0.00005
जेनान	0.00009
ओज़ोन	0.000007

1.2.2 प्रकाश

जीवन के लिए प्रथम और सर्वाधिक आवश्यकता ऊर्जा और सूर्य का प्रकाश है। सौर विकिरण इस ग्रह पर ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है। सूर्य का प्रकाश जल को वाष्पित करता है जो बाद में वर्षा के रूप में गिरता है। यहीं उर्जा पृथ्वी को असमान रूप से गर्म कर के पवन प्रवाह का कारण बनती है। पौधे, जो पृथ्वी पर हर प्रकार के जीवन के मौलिक आधार है, पृथ्वी पर पड़ने वाले सौर विकिरण के कुछ अंश को अपने उपयोग में लाने के लिए सक्षम हैं। जैसा कि इस से पूर्व बताया जा चुका है कि हरे पौधों की सब से महत्वपूर्ण शारीरिक क्रिया प्रकाश-संश्लेषण है जिस में कार्बन डाईऑक्साइड में उपलब्ध कार्बन, ऊर्जा समृद्ध ग्लूकोज़ में परिवर्तित कर दिया जाता है। ये ऊर्जा जो ग्लूकोज़ में संचित होती है प्रकाश से प्राप्त होती है। अतः हरे पौधे सूर्य के प्रकाश को ग्रहित करने के लिए विभिन्न प्रकार के रुपान्तरण अथवा अनुकूलन दर्शाते है। पौधों में और भी कई प्रकार की शारीरिक क्रियाएं होती है जो प्रत्यक्ष रूप

हरे पोधे प्रकाश-संश्लेषण हेतु प्रकाश को CO_2, जल और कुछ खनिजों से आहार करने के लिए ऊर्जा स्रोत के रूप में उपयोग करते हैं। जीवन के लिए अति आवश्यक गैस ऑक्सीजन प्रकाश संश्लेषण में उपोत्पाद के रूप में मुक्त होती है।

से प्रकाश द्वारा नियन्त्रित होता है, जैसे वाष्पोत्सर्जन क्रिया (transpiration), पुष्पण (दीप्तिकालिता (photoperiodism)) और अंकुरण (germination)। सूर्य का प्रकाश प्राणियों के जीवन में भी महत्वपूर्ण है। अधिकतर प्राणी प्रकाश के प्रति संवेदनशील होते हैं। बहुत से प्राणियों में प्रकाशग्राही होते हैं और जीवों की अधिकांश संख्या की क्रियाशीलता का सामंजस्य प्रकाश द्वारा नियन्त्रित होता है। अधिकांश कीट, पक्षी और प्राणी दिन में सक्रिय होते है किन्तु कुछ कीट जैसे तिलचट्टे पतंगे और कुछ जीव जैसे चमगादड़ प्राकृतिक रूप से रात में अधिक सक्रिय होते है। अर्थात् उनकी क्रियाशीलता प्रकाश की अनुपस्थिति से प्रभावित होती है।

1.2.3 तापमान

सारे प्राणी तापमान से प्रभावित होते हैं। अधिकांश प्राणी एक परिमित तापीय परिसर में जीवित रह सकते हैं। वास्तव में प्रत्येक जाति में अपने ही एक तापमान के परिसर में सीमित रहने की प्रवृति पाई जाती है जिसमें वह सामान्य रूप से क्रियाशील रह सके। यदि इस परिसर से तापमान घटता या बढ़ता है तो उसकी क्रियाशीलता प्रभावित होगी यहां तक कि उसका अस्तित्व भी खतरे में पड़ सकता है। तापमान का वह परिसर जिसमें प्राणी का अस्तित्व बना रह सकता है 'सहनशक्ति सीमा (tolerance limit) कहलाती है। प्रत्येक शारीरिकक्रिया के लिये एक न्यूनतम, अधिकतम और अनुकूलतम तापमान होता है। न्यूनतम तापमान वह होता है जिस पर क्रिया प्रारंभ होती है, अधिकतम वह, जिस से बढ़ने पर क्रिया संभव नही होती और अनुकूलतम वह तापमान है जिस पर क्रिया की गति तीव्रतम होती है। अपेक्षाकृत कुछ ही जीव 45°C के शारीरिक तापमान से अधिक पर जीवित रहते है। कुछ जीव शारीरिक एवं व्यवहारात्मक अनुकूलन करके अत्याधिक तापमान सहन कर लेते हैं। यदि आप राजस्थान की यात्रा करें तो आप वहां की वनस्पति को अन्य क्षेत्रों की वनस्पति से नितान्त भिन्न पाएंगे। मरुस्थलों में उगने वाले पौधों के पत्तों तनों और अन्य भागों में अनेकों आकारिक परिवर्तन हैं (चित्र 1) इसी प्रकार रेगिस्तान के प्राणी तीव्र तापमान से बचने के लिए बिलों में रहते हैं। शीत ऋतु में शीत प्रदेशों से गर्म प्रदेशों की ओर पक्षियों का प्रव्रजन (migration) और फिर ग्रीष्म ऋतु में अपने ठंडे प्राकृतिक वास की ओर वापसी तापमान के प्रति अनुकूलन का एक और उदाहरण है। स्तनी वर्ग (mammals) की अनेकों जातियां हैं जो ताप या शीत की चरमसीमा से सुरक्षित रहने के लिए ऐसा ही प्रव्रजन करती हैं। दुसरी ओर बहुत सी जातियां ऐसी हैं जो प्रव्रजन कर नहीं पाती हैं और शीत अथवा ग्रीष्म की चरमसीमा से बचने के लिए शारीरिक रूप में प्रसुप्त अवस्था में चली जाती हैं जैसे ध्रुवीय रीछ हिम ताप में जीवित रह सकते हैं किन्तु चरम शीत ऋतु बिताने के लिए वह निष्क्रिय (hibernate) हो जाते है।

चित्र 1: नागफनी के पौधे शुष्क जलवायु में अनुकूलन के अच्छे उदाहरण हैं

1.2.4 पवन

पवन अथवा वायु का तीव्रगामी प्रवाह मौसम की अवस्था को निर्धारित करता है और कुछ जीवों के लिए महत्वपूर्ण पर्यावरणीय कारक बन जाता है। पौधे पवन से बहुत अधिक प्रभावित होते हैं। शारीरिक क्रियाओं में से कुछ जैसे वाष्पोत्सर्जन, तीव्र अथवा मन्द पवन से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है। अधिक ऊंचाइयों पर जहां पवन का वेग बहुत अधिक रहता है पवन का संघात आसानी से देखा जा सकता है। कभी कभी सम्पूर्ण वृक्ष वितान हवा की शक्ति के प्रभाव में हवा की दिशा के अनुरूप बदल जाता है। वृक्षों के विभिन्न भाग जैसे शाखाएं, पत्तियां, फल और फूल क्षतिग्रस्त होकर टूट जाते हैं

और कभी कभी तो कम गहरी, कमज़ोर जड़ों वाले वृक्षों का जड़ से उखड़ कर गिर जाना भी सामान्य सी घटना होती है। हवा बीजों और फलों के प्रकीर्णन में सहयोग देती है।

1.2.5 आर्द्रत

वायुमण्डल में जलवाष्प या नमी की मात्रा को आर्द्रता (humidity) कहते हैं जब वायुमण्डल में एक निश्चित तापमान और दबाव पर नमी की अधिकतम मात्रा उपलब्ध होती है तो उसे निरपेक्ष आर्द्रता (absolute humidity) कहते हैं।

वायु में व्याप्त वास्तविक आर्द्रता और आर्द्रता का वह अनुपात जिसे उस तापमान पर हवा धारण कर सकती है आपेक्षिक आर्द्रता (relative humidity RH) कहलाता है।

$$\text{आपेक्षित आर्द्रता (RH \%)} = \frac{\text{हवा में उपस्थित नमी (जलवाष्प) की मात्रा} \times 100}{\text{हवा को संतृप्त करने के लिए नमी (जलवाष्प) की मात्रा}}$$

किसी विशेष क्षेत्र की आपेक्षित आर्द्रता तापमान, वायु दाब, ऊंचाई, पवन वेग, वनस्पति और मिट्टी की नमी से प्रभावित होती है। परिणामस्परूप वायुमण्डलीय नमी की मात्रा, तापमान और अपेक्षित आर्द्रता में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि वायुमण्डल का तापमान बढ़ जाए तो आपेक्षित आर्द्रता घट जाएगी और तापमान कम हो जाने पर आपेक्षित आर्द्रता बढ़ जाएगी। धरातलीय जीवों के शरीर की सतह से वाष्पोत्सर्जन, स्वेदन आदि जैसी शारीरिक क्रियाओं के द्वारा होने वाले वाष्पीकरण की दर वायुमण्डलीय आर्द्रता द्वारा ही नियन्त्रित होती है। यदि आप किसी ऐसे पर्वतीय स्थल की यात्रा करें जहां ग्रीष्म ऋतु को छोड़ कर शेष मौसमों में आर्द्रता अधिक रहती है तो आप पाएंगे के उस प्रकृति में रहते हुए पौधों और अन्य जीवों ने ऐसे पर्यावरण के अनुसार स्वयं में कितना अनुकूलन कर लिया है। अधिक आपेक्षिक आर्द्रता में उगने वाले पौधों को आर्द्रतोभिद (hygrophytes) जैसे लाइकेन आदि के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।

1.2.6 जल

जल जीवन की एक मौलिक आवश्यकता है। क्या आप जानते हैं कि पौधों और जंतुओं की कोशिकाओं में सब से अधिक जल का ही प्रतिशत होता है? किसी भी प्रकार के जीव जल के बिना जीवित नहीं रह सकते हैं। अगर आप ने जाति के विकास पर कोई पुस्तक पढ़ी है तो आप अवगत होंगे कि जीवन का आरंभ जल में ही हुआ है। यदि आप इतिहास के विद्यार्थी है तो आप यह भी जानते होंगे कि अधिकांश सभ्यताएं नदियों के निकट या नदी तट पर विकसित हुई क्योंकि जल जीवन का आधार है। घरेलू कार्यों, सिंचाई और औद्योगिक उद्देश्यों के लिए इसकी आवश्यकता होती है।

यदि आप किसी झील, तलैया या अपने निकटवर्ती क्षेत्र की नदी तक जाएं तो आप देखेंगे कि काफी पौधे और जीव जल में निवास करते है। कुछ जीव ऐसे भी होते है जो जल और थल दोनों पर रहते है (जलस्थली (amphibians), उदाहरण मेंढक)। नदियों में विविध प्रकार की मछलियां पाई जाती हैं। तीव्र प्रवाही जल में रहने वाली मछली और अन्य प्राणियों में ऐसी युक्तियां होती हैं जिनके द्वारा वे तेज धाराओं में आराम से रह पाते हैं। वे तीव्र जलधाराओं में बच सकने में सक्षम होते हैं और इस प्रकार के प्रवाही तंत्र में जीवित रह सकते हैं। इस के साथ की कुछ ऐसे जीव भी है जो कुशल तैराक नहीं हैं, और पत्थरों के नीचे, नदी तल की विदरिकाओं में या फिर रेत में बने बिलों में रहते हैं जैसे कि घोंघे, सीपियां और स्लग।

जल की आवश्यकता अलग अलग जीवों में अलग अलग होती है और जीवों का वितरण आवश्यकता और जल संरक्षण हेतु विशेष अनुकूलन पर आधारित है। उदाहरणार्थ जलीय पौधे (जलोद्भिद) तथा प्राणी (मछली) जलीय पर्यावरण में निवास करने के लिए भलीभांति अनुकूलित हैं। उनमें जलीय पर्यावरण में जीवित रहने के लिए आकारिक, शारीरिक और शरीरक्रियात्मक संशोधन हैं। चित्र 2 (a) में उन मैंग्रोव (गरानों) को दिखाया गया हैं जिनकी जड़ें ऑक्सीजन और कार्बन डाईऑक्साइड के विनिमय के लिए विशेष प्रकार से अनुकूलित होती हैं क्योंकि वे ऐसे क्षेत्र में उगते है जहां ऑक्सीजन बहुत कम होती है। चित्र 2 (b) में मैंग्रोव की एक ऐसी स्पीशीज को दिखाया है जिसकी पत्तियों से अतिरिक्त नमक के नि:स्त्रावण के लिए अनुकूलन है। ऐसा इस लिए आवश्यक है क्योंकि गरानों की ये स्पीशीज़ अंशत: खारी जल में डूबे रहते हैं

चित्र 2: (a) गरानों की जड़ों से निकले हुए स्पंजी उद्वर्ध रेत और जल से ऊपर उठे होते है (तीर के निशान को देखिए) वे गैसों के विनिमय में सहयोग देते हैं। (b) गरानों की कुछ स्पीशीज़ अपनी पत्तियों से अतिरिक्त नमक का निःस्त्रावण करती है जो उनकी सतह पर अवक्षेपित हो जाता है।

जहां कहीं जल का अभाव होता है, जैसे मरुस्थल में, वहां जीव जल की क्षति के लिए अनुकूलित होते हैं। जैसे कंगारु चूहा (चित्र-3) भलीभांति लगभग जलरहित पर्यावरण में जीवित रहने के लिए सब से अधिक उपयुक्त है। उसकी बृहदांत्रा उत्सर्गी पदार्थों से अधिकांश जल अवशोषित कर लेती है और इस प्रकार वह उस जल की आपूर्ति कर लेते हैं जो सांस लेते हुए फेफड़ों से वाष्पीकृति हो जाता है। वह अपनी गतिविधियों को रात के लिए प्रतिबन्धित करके और दिन के समय बिल में छुप कर गर्मी से बचा रहता है।

चित्र 3: कंगारु चूहा मरुस्थलीय पर्यावरण के लिये भलीभांति अनुकूलित होता है।

1.2.7 मृदा

मृदा खनिज तत्वों (पोषक) का प्रमुख भण्डार है जिन की पौधों और प्राणियों को आवश्यकता होती है। पौधे मृदा में घुलित अवस्था में उपलब्ध बृहत् और सूक्ष्म-पोषक प्राप्त करते हैं। मृदा में उपलब्ध पोषकों की मात्रा, जल को अपने अन्दर रोके रखने की क्षमता और मृदा का वातन, मृदा की उर्वरता को निर्धारित करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यही उर्वरता पौधे की उत्पादकता को प्रभावित करती है और उन जीवों की संख्या को भी निर्धारित करती है, मृदा जिनका पोषण कर सकती है। उदाहरणार्थ दुमटी मृदा रेत और चिकनी मिट्टी के कणों का मिश्रण है और कृषि तथा वनवर्धन की दृष्टि से उत्तम समझी जाती है। इस में जल को अपने अन्दर रोके रखने की अच्छी क्षमता है और

पर्याप्त मात्रा में जल और वायु को रोके रखती है। इसीलिए दुमटी मृदा में मूल और मूल रोम का गहराई तक बेधन सरल हो जाता है।

आप अगर मृदा का अनुलम्ब परिच्छेद काटें तो आप तीन स्पष्ट परतें (A, B और C संस्तर, देखिए चित्र-4) पायेंगे। वास्तविकता ये है कि A- संस्तर या ऊपरी संस्तर अर्थात् ऊपरी मृदा सब से महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी में बीज अंकुरित होता है और यहीं से पौधे पोषण प्राप्त करते हैं। यही कारण है कि हम ऊपरी मृदा को विभिन्न विधियों द्वारा बचाना या सुरक्षित रखना चाहते हैं। **विभिन्न बलों जैसे वायु और जल आदि के द्वारा ऊपरी मृदा के हटने को मृदा अपरदन (soil erosion) कहते हैं और अपरदन से बचाव को मृदा संरक्षण (soil conservation) कहते हैं।** मृदा संरक्षण के लिए कई तकनीक को उपयोग में लाया जाता है। **B संस्तर या अवमृदा** में कार्बनिक पदार्थ कम होता है अत: ये संस्तर की A की अपेक्षा कम उर्वर होता है। इस के नीचे **C-संस्तर** होता है जो अंशत: अपघटित निचली आधार शैल या अवसादों द्वारा निर्मित खनिज की परत है। C-मृदा की उर्वरता कम है।

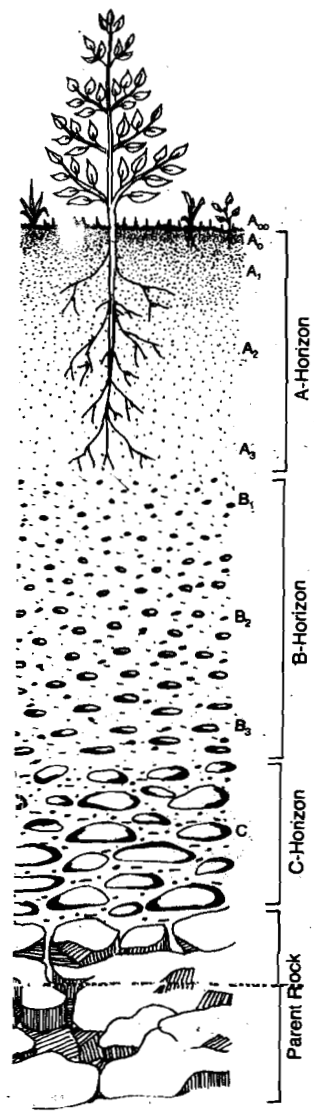

चित्र 4 : मृदा संस्तर

सारे पर्यावरणीय कारक जैसे धूप, तापमान, वर्षा, वायुमण्डलीय आर्द्रता पवन आदि **अलग अलग रह कर स्वतन्त्र रूप से कार्य नहीं करते। कारकों में एक घनिष्ट संयोजन है।** प्रकाश व तापमान घनिष्ट रूप से संयोजित हैं। धरातल और जलस्थल सूर्य का प्रकाश पाकर गर्म हो जाते हैं। पृथ्वी की सतह से पुन: विकिरण पृथ्वी के निकटवर्ती वायुमण्डल को गरम कर देता है।

जब प्रकाश किसी हरे भरे क्षेत्र पर पड़ता है तो अधिकतर प्रकाश हरे पौधों द्वारा रोक लिया जाता है और उसका बहुत कम अंश पृथ्वी तल पर पहुंच पाता है किन्तु जब प्रकाश किसी ऐसे क्षेत्र पर पड़ता है जो वनस्पति आवरण रहित हो तो मृदा की सतह बहुत जल्दी गर्म हो जाती है। पत्थर, कंकड़, रेत और यहां तक कि ईंटें भी और अधिक गर्म हो जाती है। यही कारण है कि शहरी क्षेत्रों की सूक्ष्म जलवायु (micro climate), जहां ठोस पथरीला निर्माण पाया जाता है, स्पष्ट रूप से ग्रामीय जलवायु से भिन्न होती है जहां घर मकान आमतौर से मिट्टी के बने होते हैं और जिनके प्रतिवेश में अधिक हरियाली होती है।

इसी प्रकार तापमान और वर्षा में भी घनिष्ट सम्बन्ध है। उच्च तापमान अधिक वाष्पीकरण दर (जल की खुली सतह से) और पौधो से वाष्पोत्सर्जन (transpiration) के लिए उत्तरदायी है। समुद्र, झीलों और तलैयों से चलने वाली गर्म वायु अत्याधिक आर्द्र होती हैं। ये गर्म और नम हवाएं ऊंचे भागों की ओर बढ़ते हुए ठंडी और संघनित होकर वर्षा में परिवर्तित हो जाती हैं जो पृथ्वी पर ताज़े जल का प्रमुख स्रोत है।

तापमान का संबध वायु के परिसंचारण और कई दूसरे कारकों जैसे वायुमण्डलीय दाब, ऊंचाई, वनस्पति और मृदा आर्द्रता से है अत: यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सारे वायुमण्डलीय कारक परस्पर और जैव कारको से संयोजित हैं।

बोध प्रश्न 1

1) पारिस्थितिकी और पर्यावरण को परिभाषित कीजिए। पर्यावरणीय कारक से क्या तात्पर्य है?

.....

.....

.....

2) किसी क्षेत्र में पैदा होने वाले पौधों की संख्या को मृदा स्वरूप किस प्रकार प्रभावित कर सकता है?

.....

.....

.....

3) इस खण्ड का अध्ययन करने के पश्चात् क्या आप संक्षिप्त रूप से बता सकते हैं कि किसी क्षेत्र के पर्यावरण का ज्ञान प्राप्त करना क्यों महत्वपूर्ण है?

.....

.....

.....

.....

1.3 समय के साथ पर्यावरण में परिवर्तन

हमारे सौर मण्डल या पृथ्वी ग्रह के इतिहास से यह स्पष्ट हो चुका है कि हमारे पर्यावरण में क्रमिक किन्तु निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। इन में से कुछ परिवर्तन धीमे हैं और कुछ तीव्रगामी हैं।

1.3.1 मंदगति परिवर्तन

मंदगति परिवर्तनों को एक जीवन काल या सौ दो सौ वर्षों की अवधि में नही देखा जा सकता । इस प्रकार के परिवर्तनों का अध्ययन जीवाश्म अभिलेखों (fossil records) के माध्यम से किया जा सकता है। उदाहरणार्थ चन्द्रमा से लाई गई शिलाएं लगभग चार अरब वर्ष पुरानी थीं जबकि पृथ्वी पर पाई जाने वाली प्राचीनतम शिला तीन अरब वर्ष पुरानी हैं। जीवाश्म अभिलेखों से किसी विशेष क्षेत्र के पर्यावरण और जीवों में होने वाले धीमे परिवर्तनों का अध्ययन किया जा सकता है।

पृथ्वी मण्डल का सर्वप्रथम संगठन उस समय प्रारंभ हुआ जब अपनी उत्पत्ति से 800,00,000 वर्षों के अन्दर ही वह द्रवित होना शुरू हुई। लोहे और दूसरे भारी धातुओं ने पृथ्वी के केन्द्र या कोड की ओर निमग्न प्रारंभ किया और हल्के धातु गैसों के रूप में बाहर फेंक दिए गए। इस प्रकार प्रथम वायुमण्डल की रचना हुई। उस समय कोई मुक्त ऑक्सीजन (O_2) नहीं थी। जब ग्रह ठंडा हुआ, आवरण की बाहरी परत भूपृष्ठ के रूप में ठोस हो गई। उसके बाद गिरते हुए उल्कापिंडों के कारण बहुत से परिवर्तन आए क्योंकि उन उल्कापिंडों ने न केवल आदि कालिक भूपृष्ठ को छिद्रित किया बल्कि उसे गर्म कर दिया। इस के परिणामस्वरूप वायुमण्डल की बहुत सी प्रारंभिक गैसे निकल गई। पृथ्वी भूवेज्ञानिक रूप से क्रियाशील हो गई, ज्वालामुखी क्रिया के कारण लावा राख जिनकी रचना गैसों से हुई थी बहुत अधिक मात्रा में बाहर फेंक दी गई। प्रमाणों द्वारा विदित है कि उस समय भी और आज भी कार्बन डाईऑक्साइड, नाइट्रोजन और जल वाष्प जैसी गैसे ज्वालामुखी निस्तरण (जलयोजित खनिजों से मुक्त हुई) की महत्वपूर्ण संघटक हैं। जलवाष्प के ठंडा होने के कारण बादलों की रचना हुई और परिणामस्वरूप होने वाले वर्षण के कारण महासागरों, नदियों, आदि की इस ग्रह पर रचना हुई। इस वर्षण के साथ होने वाली तड़ित-झंझा की आदिकालिक वायुमण्डल के तत्वों के संकर अणुओं के रूपान्तरण में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यही संकर अणु जीवन की रचना के महत्वपूर्ण आधार हैं।

समय बीतने के साथ ही भूपृष्ट मोटा होता गया। सूर्य के प्रकाश से पृथ्वी को ऊष्मा प्राप्त हुई। भूपृष्ट पर ये गरमी प्रारंभ में असमान थी। तापक्रम में निरन्तर परिवर्तन हो रहा था। यही तापीय असमानता और बदलाव वायुमण्डल में गैसों और जल के प्रवाह का कारण बने। वायुमण्डल में तड़ित-विसर्जन के कारण तप कर बने कार्बन, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन के संकर अणु महासागरों में एकत्र हुए और प्रारंभिक जीव की उत्पत्ति हुई यानि जीव सर्वप्रथम महासागर में विकसित हुआ। धीरे धीरे प्रकृति और वायुमण्डल में बदलाव आया। एक ऐसे जीव की उत्पत्ति हुई जिस में क्लोरेफ़िल नामक यौगिक था। इस यौगिक में सौर ऊर्जा को ग्रहण कर कार्बन डाईऑक्साइड और समुद्री जल का उपयोग कर के कार्बोहाइड्रेट बनाने की क्षमता थी। इस अभिक्रिया में ऑक्सीजन गौण उपज (byproduct) के रूप में प्राप्त हुई। इस से पूर्व वायुमण्डल नाइट्रोजन, कार्बन डाईऑक्साइड और हाइड्रोजन द्वारा ही निर्मित था। आज हम ये कल्पना भी नही कर सकते कि पृथ्वी के प्रारंभिक वायुमण्डल में ऑक्सीजन नहीं थीं। वास्तव में प्रारंभ के जीवों में ऑक्सीकरण (oxidation) की प्रवृति थी। जैसे-जैसे आक्सीजन वायुमण्डल में हरे पौधों के द्वारा हुए प्रकाश संश्लेषण के कारण संचित होना प्रारंभ हुई, वैसे-वैसे कार्बन डाईआक्साइड घटने लगी। नव निर्मित ऑक्सीजन का कुछ अंश महासागरों में घुले हुए लोहे द्वारा अवशोषित कर लिया गया। गैसों के, आक्सीजन सहित इस नए संयोग में संभवता ऐसे नए जीव

विकसित हुए होंगे जिन में ऑक्सीजन सहन करने की शक्ति और उसको उपयोग करने की कुछ अधिक योग्यता रही होगी जिससे कि जीवन प्रक्रम भलीभांति चल सके। इस प्रकार ऑक्सीजन वायुमण्डल में नाइट्रोजन के बाद दूसरे नम्बर की सब से अधिक पाई जाने वाली गैस बन गई और कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा बहुत कम हो गई।

वायुमण्डल में ऑक्सीजन की वृद्धि के कारण एक और महत्वपूर्ण परिवर्तन उस समय हुआ जब कुछ मात्रा में ऑक्सीजन ओज़ोन के रूप में परिवर्तित हुई। जैसा कि आपकों ज्ञात है समतापीय मण्डल (stratosphere) में ओज़ोन की परत बहुत से जीवों के लिए सूर्य से उत्सर्जित पराबैंगनी विकिरण के विरुद्ध सुरक्षा आवरण का काम देती है। लगभग साठ करोड़ वर्ष पूर्व प्रारंभ हुए वायुमण्डल में मन्द गति के परिवर्तनों के कारण आज के इस वायुमण्डल की रचना हुई। वायुमण्डल की ये अवस्था जीवन के लिए बहुत सुखद है। किन्तु मानवीय कार्यकलापों के प्रभावों के कारण वायुमण्डल की यह अवस्था भी तीव्र गति से परिवर्तनशील है जिसका हम दूसरी इकाईयों में वर्णन करेंगे।

भूखण्ड में परिवर्तन या महाद्वीपीय संचलन

जर्मन वैज्ञानिक एल्फ्रेड वैगनर (Alfred Wegener) के अनुसार लगभग बीस करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी पर एक ही महाद्वीप था जिसे उसने पेन्जिया (Pangaea) के नाम से पुकारा। पेन्जिया एक ग्रीक शब्द है जिस का अर्थ है 'समस्त भूमि' (देखिए चित्र-5)।

वैज्ञानिक मानते है कि महाद्वीप धीरे-धीरे विस्थापित होते हैं, लगभग पन्द्रह से.मी. प्रति वर्ष की दर से। इस क्रमिक विस्थापन ने चालीस करोड़ वर्षों में पृथ्वी को वह आकृति प्रदान की है जैसा इसे आज हम देखते हैं। वैज्ञानिक प्रमाण मिले हैं जिन से पता चलता है कि भारतीय प्लेट (भूखण्ड) भी गोंडवानालैण्ड से विस्थापित होकर लारेशिया से जा मिला और भारतीय महाद्वीप को आज की आकृति प्रदान की। इन दोनों महाद्वीपों के संयोजन के समय हुई टक्कर से हिमालय की उत्पत्ति हुई।

पृथ्वी के अन्दर भी कई प्रकार की मन्द क्रियाए चल रही हैं। क्रोड (core) या पृथ्वी के गर्भ की रचना पिघले हुए सघन और अत्यन्त तप्त धातु से हुई है। क्रोड को घेरे हुए एक आवरण (mantle) है जो गरम चट्टान की आनम्य परत है। इस क्षेत्र में संवहन धाराओं (connection current) का बड़े पैमाने पर चक्रण होता है। यही ज्वालामुखी विस्फोटों, भूकम्पों और पर्वतों के निर्माण आदि का कारण है।

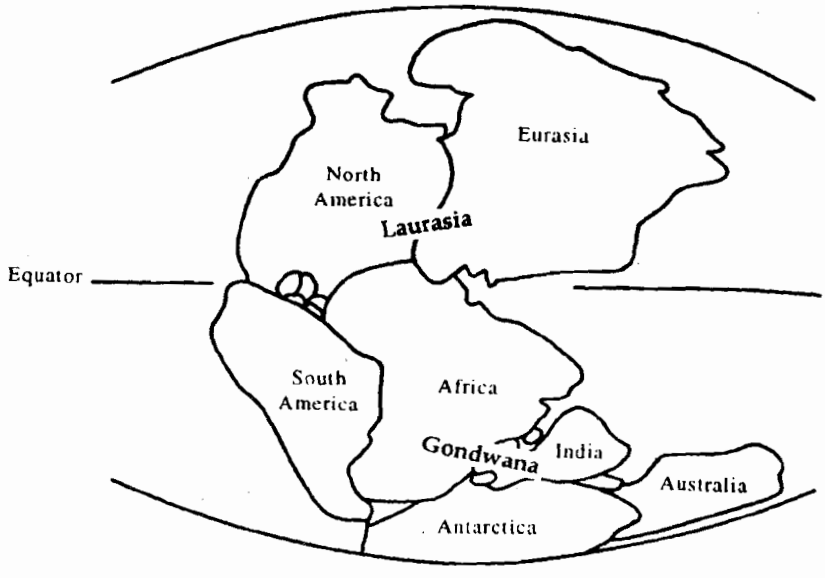

चित्र 5 : मध्य जीव कल्प के प्रारंभ में समस्त महाद्वीप पेन्जिया के रूप में संयोजित थे। उस समय की विभिन्न महाद्वीपों की स्थिति।

अत: यह स्पष्ट है कि पृथ्वी के अन्दर और बाहर वायुमण्डल में निरंतर परिवर्तन होता रहा है। इस ग्रह पर समस्त स्पीशीज़ का विकास जीवों की पर्यावरणीय परिस्थितियों से अनुकूलन करने की क्षमता पर निर्भर है। इन वायुमण्डलीय परिवर्तनों का जलवायु पर सुस्पष्ट प्रभाव पड़ता है और जलवायु पृथ्वी की उत्पत्ति से लेकर अब तक, बहुत बदल चुकी है।

1.3.2 तीव्रगामी परिवर्तन

मनुष्य के कुछ ऐसे कार्यकलाप हैं जिनके कारण हमारे पर्यावरण और जलवायु दोनों में तीव्रगामी परिवर्तन हुए हैं। औद्योगिक क्रान्ति के बाद अत्याधिक प्रौद्योगिकीय प्रगति और आर्थिक उपलब्धियों का आधुनिक सभ्यता के लिए महत्वपूर्ण योगदान है। मानव समाज के लिए अभूतपूर्व सम्पन्नता भी उसी के द्वारा आई है। किन्तु इसके साथ ही, इस के कारण हम अभूतपूर्व खतरो और संकट की ओर भी बढ़े है और इन से सम्बद्ध समस्याओं को मानव भविष्य के हित में तुरन्त सुलझाना अति आवश्यक है। यदि आप कुछ औद्योगिक नगर जैसे मुम्बई, दिल्ली, कानपुर (उ. प्र.) मण्डी गोबिन्दगढ़ (पंजाब) कोरबा (म. प्र.) सूरत (गुजरात) विशाखापटनम (आं. प्र) आदि की यात्रा करें तो पाएंगे कि इन नगरों का पर्यावरण बदल रहा है। महानगरों में मोटर गाड़ियों के द्वारा प्रदूषण प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है जो वायुमण्डलीय प्रदूषण का सब से बड़ा कारण है। यदि आप अपने माता, पिता या बड़ों से पूछें तो वह आप को बताएंगे कि पर्यावरणीय परिस्थितियां शहरी एवं ग्रामीय दोनों ही क्षेत्रों में कितनी तेजी से बदली हैं। कुछ सार्वभौमिक पर्यावरणीय समस्याएं जैसे जलवायु परिवर्तन, मुख्यत: मनुष्य के कार्यकलापों जैसे कोयला, पेट्रोल या अन्य जीवाष्मीय ईंधन जलाना, बड़े पैमाने पर वन-अपरोपण और खनन आदि के कारण होते हैं। ये पर्यावरण में होने वाले तीव्रगामी परिवर्तनों का उदाहरण है। इसे केवल एक पीढ़ी में ही नहीं बल्कि दस बीस वर्षों में भी देखा जा सकता है।

ग्रीन हाउस प्रभाव और बदलता वायुमण्डल

सारणी-2: प्रदूषण के कारण

कारण	प्रदूषण प्रतिशत
परिवहन	42%
ईंधन	21%
उद्योग	14%
ठोस अपशिष्ट प्रयोजन	5%
अन्य	18%

रसायनिक प्रदूषण पृथ्वी के वायुमण्डल की संरचना को परिवर्तित कर रहा है और जलवायु को बदल देने, पौधों की पैदावार के प्रारूप को परिवर्तित कर देने और मनुष्य तथा जीवों को ख़तरनाक पराबैंगनी (ultraviolet) विकिरण से अरक्षित कर देने का भय उत्पन्न कर रहा है। प्रदूषण के मूल कारण सारणी-2 में दिए गए है।

प्रदूषण के इन कारणों में से जीवाष्मीय ईंधन का जलाया जाना और वनों का जलाया जाना कार्बन डाईऑक्साइड चक्र में असंतुलन का कारण बना है। हाल ही में जितनी कार्बन डाईऑक्साइड हरे पौधे और वृक्ष अवशोषित करते हैं उससे अधिक मुक्त हो रही है। कार्बन डाईऑक्साइड की बढ़ती हुई मात्रा वायुमण्डल में छाती जा रही है और उसने वहां एक मोटा आवरण बना लिया है जो सौर विकिरण के लिए पारदर्शी है और दृश्य प्रकाश को धरातल की सतह तक पहुंच जाने देता है, किन्तु पुनर्विकिरण के रूप में वापस लौटती हुई ऊष्मीय तरंगे (अवरक्त विकिरण) उस आवरण के द्वारा रोक ली जाती है। ऊष्मा वापस पृथ्वी पर लौटा दी जाती हैं और इस तरह ग्रीनहाउस प्रभाव (greenhouse effect) का कारण बनती हैं।

वह पांच गैसें जो ग्रीन हाउस प्रभाव में योगदान प्रदान करती हैं निम्नवत् हैं:

कार्बन डाईऑक्साईड (CO_2) - 50%

क्लोरोफ़्लोरो कार्बन्स (CFC_s) - 14%

मीथेन (CH_4) - 18%

ओज़ोन (O_3) - 12%

ट्रोपोस्फ़ेरिक नाइट्रस ऑक्साइड - 6%

यह स्पष्ट है कि इन गैसों में से ग्रीनहाउस प्रभाव या वायुमण्डलीय तापन में कार्बन डाईऑक्साइड का सर्वाधिक योगदान है। वायुमण्डल में कार्बन डाईऑक्साइड के एकत्रीकरण में गत दो दशकों में तीव्रगति से वृद्धि हुई है। कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) का 1958 में एकत्रीकरण दस लाख में 315 अंश था जो 1990 में बढ़ कर 353 अंश प्रति दस लाख हो गया और 1.5% की अनुमानित दर से प्रति वर्ष बढ़ रहा है। ये बहुत कम प्रतीत होता है किन्तु ये कार्बन डाईऑक्साइड की बढ़ती हुई दर भयप्रद है और वैज्ञानिकों की भविष्यवाणी है कि यदि इसी दर से बढ़ती रही तो पृथ्वी क औसत तापक्रम वर्ष 2030 ई० तक 3-4°C बढ़ जाएगा । समुद्रों की सतह 3 से 7 फीट तक ऊपर उठ जाएगी और बहुत से छोटे द्वीपों और विभिन्न महाद्वीपों के तटीय क्षेत्र डूब जाएंगे।

बॉक्स 1 : ग्रीनहाउस प्रभाव

आपने देखा होगा कि अगर आप तपती हुई धूप में खड़ी कार की सारी खिड़कियां बन्द कर दें तो अन्दर असहनीय रूप से गर्मी हो जाती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि प्रकाश खिड़कियों के शीशे से गुज़र कर अन्दर पहुंच जाता है। प्रकाशीय ऊर्जा ऊष्मीय ऊर्जा में परिवर्तित होकर वहां रह जाती है और कार को गरम कर देती है। ग्रीन हाऊस या पादप गृह पौधे उगाने के लिए बनाए जाते हैं और इसी सिद्धांत पर कार्य करते है। चूंकि वे शीशों के बनाए जाते हैं अत: प्रकाश अन्दर पहुंच जाता है किन्तु ऊष्मा बाहर नही निकल सकती। कार्बन डाईऑक्साइड का गुण भी ऐसा ही है कि सूर्य का प्रकाश वायुमण्डल से गुज़र जाने देती है किन्तु ऊष्मा को वायुमण्डल से निकलने नही देती। इस प्रकार सामान्य मात्रा में कार्बन डाईऑक्साइड वायुमण्डल के तापमान को बनाए रखती है। परन्तु यदि वायुमण्डल में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि होती है तो वायुमण्डल में अधिक ऊष्मा रोक ली जाएगी जो उसका तापमान बढ़ा देगी। ऊष्मा का इस प्रकार वायुमण्डल में रोक लिया जाना ही 'ग्रीन हाउस प्रभाव' कहलाता हैं।

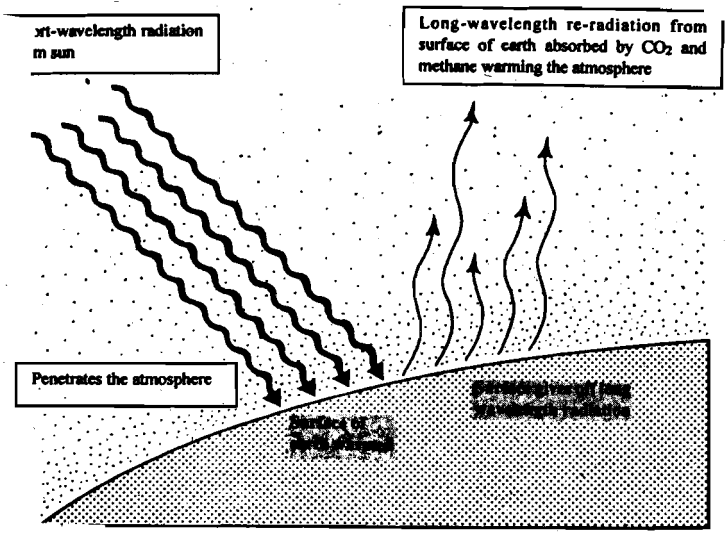

चित्र-6 : आरेखीय ग्रीनहाउस प्रभाव। लघु तरंगदैर्ध्य विकिरण वायुमण्डल से गुज़रती है जबकि कार्बन डाईऑक्साइड और ग्रीन हाउस प्रभाव की अन्य गैसें गर्म धरातल से आने वाली दीर्घ तरंगदैर्ध्य (अवरक्त) विकिरण को ग्रहण करतीं है।

ओज़ोन की परत में अवक्षय हमारे वायुमण्डल में दूसरा सबसे महत्वपूर्ण तीव्रगामी परिवर्तन है। इससे पहले के अनुभाग में आप ने पढ़ा कि ओज़ोन की परत समताप मंडल में आने वाली पराबैंगनी विकिरण (लघु तरंगदैर्ध्य 200-400 nm) का अवशोषण कर लेती है। यदि यह पराबैगनी प्रकाश ओज़ोन द्वारा निस्यंदित न हो तो सूक्ष्मजीवों का सर्वनाश कर देगी और पशुओं तथा मनुष्यों में कई बीमारियों का कारण भी बन सकती है। यह पौधों और वृक्षों को नुकसान पहुंचा सकती है। प्लांकटन और दूसरे समुद्री जीवों, यहां तक कि मानवों के असंक्रम्य तन्त्र (immune system) को भी क्षतिग्रस्त कर सकती है।

कई प्रकार के रसायन विशेष रूप से क्लोरोफ्लोरो कार्बन (CFCs) और उस से कुछ कम मात्रा में हेलान्स, कार्बन टेट्राक्लोराइड और मेथिल क्लोरोफॉर्म वायुमण्डलं में छोड़ी जाती है। CFCs का उपयोग बड़े पैमाने पर रेफ्रीजरेटरों, एअर कन्डीश्नर आदि में शीतलकों के रूप में और ऐरोसॉल स्प्रे के डिब्बों में नोदकों के रूप में होता है। ये CFCs ऊपर समताप मण्डल की ओर स्थानान्तरित हो जाते हैं। लगभग 25 किलोमीटर की ऊंचाई पर ये CFCs पराबैंगनी विकिरण द्वारा विघटित कर दी जाती हैं और परिणामस्वरूप क्लोरीन मुक्त हो जाती है, जो आसानी से ओज़ोन के साथ क्रिया करके उसे नष्ट कर देती है। एक श्रृंखला-क्रिया द्वारा क्लोरीन का एक परमाणु 1,000,000 ओज़ोन के अणुओं को नष्ट कर देता है। इस मन्द क्रिया के कारण ओज़ोन की परत पतली होती जा रही है और वैज्ञानिकों ने कुछ ऐसे स्थान देखे है जहां ओज़ोन इस सीमा तक कम हो चुकी है कि वहां 'ओजोन विवर' (होल) बन गया है।

सम्पूर्ण विश्व में ओज़ोन परत क्षीण होती जा रही है किन्तु ध्रुवीय क्षेत्रों, विशेषकर अन्टारटिका पर अधिक प्रभाव देखा जा सकता है। ओज़ोन परत के क्षीण हो जाने के करण पृथ्वी की सतह पर

पराबैंगनी विकिरण बहुत बढ़ जाता है और धूपताग्रत या त्वचा के केन्सर का कारण बनता है। व्यवहारिक अनुभवों के आधार पर कहा जाता है कि समताप मण्डलीय ओज़ोन में 1% कमी का अर्थ है ओज़ोन परिरक्षक में से होकर गुज़रने वाले जीवीय दृष्टि से प्रभावी विकिरण में 2% की वृद्धि। वैज्ञानिक आगामी 30-40 वर्षों में पराबैंगनी विकिरण के 5% से 20% तक बढ़ जाने की शंका व्यक्त कर रहे हैं।

अब इस विषय में काफी जागरुकता आ चुकी है और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न प्रकार के प्रदूषण को रोकने और ओज़ोन परत को सुरक्षित रखने के प्रयास किए जा रहे हैं।

उन समस्त घटकों का अध्ययन करने के बाद, जिन से हमारे पर्यावरण की रचना हुई है, हमें इस बात पर फिर ज़ोर देना चाहिए कि पर्यावरण इन सारे घटकों के जटिल समिश्र के रूप में जीवों को प्रभावित करता है। ध्यान में रखने की बात यह है कि यदि एक कारक भी अव्यवस्थित होता है तो अक्सर ऐसी श्रृंखला अभिक्रिया प्रारंभ हो जाती है जिस के परिणामों की कभी प्रत्याशा न की गई हो।

बोध प्रश्न 2

1) विभिन्न भूवैज्ञानिक कल्पों में पर्यावरण में होने वाले मंद गति परिवर्तनों का अध्ययन आप कैसे करेंगे?

.....

.....

.....

.....

2) क) कुछ ग्रीन हाऊस गैसों के नाम बताइए।

ख) कौन सी गैस ग्रीन हाऊस प्रभाव में सर्वाधिक योगदान देती है?

.....

.....

.....

.....

3) कौन सा रासायन या कौन कौन से रसायन ओज़ोन परत में क्षीणता के सर्वाधिक कारण हैं?

.....

.....

.....

.....

1.4 सारांश

किसी जीव का प्रतिवेश ही उसका पर्यावरण है। यह दो प्रकार का होता है जैविक तथा अजैविक। बहुत से पर्यावरणीय कारक जीवों, पौधों और पशुओं पर प्रभाव डालते हैं और पृथ्वी पर वनस्पति समूह और प्राणी समूह के अस्तित्व के लिए उत्तरदायी भी यही हैं। अजैविक पर्यावरणीय कारक स्वतन्त्र रूप से कार्य नहीं करते बल्कि जैविक कारकों से घनिष्ट रूप से जुड़े रहते है। पर्यावरण कभी स्थायी नहीं रहा, वह बदलता रहा है और निरंतर बदल रहा है। कुछ परिवर्तन मंदगति से होते है जिन्हें हम 100-200 वर्षों में भी नहीं देख सकते जैसे किसी भूभाग का संचलन और महाद्वीपों का निर्माण। किन्तु कुछ परिवर्तन इतने तीव्रगामी होते हैं कि उन्हें बहुत आसानी से देखा या अनुभव करा जा सकता है। आधुनिक युग में प्रौद्योगिक विकास के कारण मनुष्य ने गम्भीर पर्यावरणीय समस्याएं पैदा कर ली हैं जैसे वायुमण्डलीय सार्वभौगिक तापन और ओज़ोन परत की क्षीणता। इन समस्याओं के प्रति न केवल राष्ट्रीय सतर्कता चाहिए बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध में बड़े पैमाने पर जागरुकता अभियान की भी आवश्यकता है।

1.5 शब्दावली

रासायनिक ऊर्जा (Chemical energy) : रासायनिक बंधन के रूप में संग्रहित ऊर्जा।

गोंडवानालेण्ड (Gondwana land) : वह विशाल भूखण्ड जो 213 से 248 लाख वर्ष पूर्व ट्राइऐसिक काल में दक्षिणी गोलार्द्ध में पेन्जिया से अलग हुआ।

लॉरेशिया (Laurasia) : उत्तरी गोलार्द्ध का विशाल भूखण्ड जो 213 से 248 लाख वर्ष पूर्व ट्राईएसिक काल में पृथ्वी के एकमात्र महाद्वीप पेन्जिया से अलग हुआ

उल्कापिंड (Meteorites) : पथरीले पदार्थ, या वह धत्विक टुकड़े जो बाहरी अन्तरिक्ष से पृथ्वी की सतह पर गिरते है।

आकृतिक परिवर्तन (Morphological changes) : संरचना में परिवर्तन

प्रकाशग्राही (Photoreceptors) : प्रकाश से प्रतिक्रिया दिखने वाले ग्राही जो जीवों के शरीर में होते हैं।

प्रकाश-संश्लेषण (Photosymthesis) : जीव रसायनिक क्रियाएं जिन के द्वारा हरे पौधे और कुछ जीवाणु प्रकाशीय ऊर्जा को रोक कर उस के उपयोग से रसायनिक बन्ध बनाते हैं तथा कार्बन डाईऑक्साइड और जल का उपयोग कर के ऑक्सीजन और साधारण शर्करा बनाते हैं।

सौर-ऊर्जा (Solar energy) : सूर्य से प्राप्त ऊर्जा।

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 1.1 देखिए।

2) भाग 1.2 देखिए।

3) अपना स्पष्टीकरण दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) उपभाग 1.3.1 देखिए।

2) क) कार्बन डाइऑक्साइड, क्लोरोफ्लोरोकार्बन्स (CFCs) ओज़ोन, नाईट्रस ऑक्साइड, मीथेन।

   ख) कार्बन डाईऑक्साइड।

3) क्लोरोफ्लोरोकार्बन्स (CFCs)